मई १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

सुखो बुद्धानं उप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा सङ्घस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो॥

– धम्मपद १४-८.

सुखदायी है बुद्धों का उत्पन्न होना, सुखदायी है सद्धर्म के उपदेश। सुखदायी है सङ्घ की एकता, सुखदायी है एक साथ तपना।

सम्बुद्ध चारिका

स्वप्न पूरे हुए

आचार्य आलार कालाम और उद्दक रामपुत्र के पास सातवां और आठवां ध्यान सीखकर भी जब बुद्धत्त्व प्राप्त नहीं हुआ तो बोधिसत्व सिद्धार्थ ने देहदंडन की दुष्कर साधना आजमाकर देखी। छह वर्षों के घोर कायाकष्ट की इस क्लिष्ट साधना द्वारा शरीर को इतना कृश बना लिया कि वह हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया। दुर्बल इतना कि खड़ा होते ही गिर पड़े और मूर्छित हो जाय। लोगों को लगे कि श्रमण गौतम मरणासन्न है। अथवा यह भ्रम हो कि वह मृत्यु को प्राप्त हो गया है। इस निम्न कोटि की कायक्लेशमयी कठोर तपस्या करके देख लिया कि यह अतियों का मार्ग है। अतः निरर्थक है, निष्फलदायी है। इससे बुद्धत्व प्राप्त होने की कोई आशा नहीं।

यह महाशाक्य संवत् का १०३ रा वर्ष था। चैत्र मास समाप्त हो रहा था। तभी बोधिसत्व ने निर्णय किया कि कोई अन्य प्रयोग कर देखना उचित होगा। कौनसा प्रयोग करे? इसका चिंतन करने पर बचपन की एक घटना याद आयी। हल जोतने का वार्षिक मेला था। गांव-नगर के सभी लोग एकत्र हुए थे। परम्परागत मान्यता के अनुसार शासक महाराज शुद्धोदन ने बड़ी धूमधाम के साथ खेत की भूमि पर पहला हल चलाया। बालक सिद्धार्थ को पास ही एक जामुन के पेड़ की छांह में सुलाकर राजसी परिचारिकाएं लोकोत्सव का धूमधड़ाका देखने खेत के किनारे जा बैठीं। कुछ समय बाद जब राजकुमार जागा तो किसी को पास न देखकर जामुन के पेड़ की छाया में पालथी मारकर बैठ गया और शीघ्र ही प्रथम ध्यान की समापत्ति में समाहित हो गया। अब बोधिसत्व ने बचपन की उस अनुभूति पर ध्यान दिया तो याद आया कि उस समय उसने अपनी सहज स्वाभाविक आश्वास-प्रश्वास की जानकारी बनाए रखने का प्रयास किया था। इसी से उसे सहज समाधि लगी थी। क्यों न इसी विधि को फिर आजमाकर देखे। इस विधि का उसने अनेक पूर्व जन्मों में भी कुछ-कुछ अभ्यास किया होगा। तो ही उस बचपन की अवस्था में बिना किसी मार्गदर्शक के यह अनायास जाग उठी थी।

बोधिसत्व ने सोचा आचार्य आलार कालाम और उद्दक रामपुत्र के यहां जो पहले से सातवें तक और सातवें से आठवें तक के ध्यान का अभ्यास किया, वह बाह्य आलंबनों पर अथवा यथाभूत अनुभूतियों से दूर महज कल्पनाओं पर आधारित था। जबकि यह आश्वास-प्रश्वास वाली आनापान की साधना अपने बारे में नैसर्गिक रूप से जो सच्चाई प्रगट हो रही है, उसी को तटस्थभाव से देखने की सहज सरल विधि है। इसमें न कोई कल्पना है और न ही स्व से असम्बंधित किसी दूर दराज के आलंबन का आधार। अतः इसी का प्रयोग करके देखा जाय। अपने ही स्वाभाविक सांस को देखते-देखते सरलता से अपने भीतर प्रवेश किया जा सकेगा और काया के भीतर की सच्चाई को देख सकने याने अनुभव कर सकने की क्षमता सहज प्राप्त हो सकेगी। ऐसी विधि जिससे अपने शरीर की सीमा के भीतर ही ध्यान रहे और बाहर के आलंबनों को छोड़कर अपने ही चित्त और शरीर के याने नाम-रूप के प्रपंच को देखा जा सके। यों इस संपूर्ण अनित्यधर्मा क्षेत्र का निरीक्षण करके उसके परे के नित्यधर्मा परम सत्य का दर्शन किया जा सकेगा। तभी बोधि प्राप्त होगी।

अनेक जन्मों की पारमिताएं अब परिपूर्ण हो जाने के कारण समय पका और बोधिसत्व का चिंतन यों सही दिशा की ओर मुड़ा। यह धर्मनियामता याने धर्म के सनातन नियमों का ही प्रभाव था, जिसने बोधिसत्व का ध्यान आनापान सति की ओर खैंचा जो कि अंतर्मुखी, सत्यमुखी, मुक्तिदायिनी विपश्यना साधना का प्रथम चरण है।

परम सत्य की लोकोत्तर अवस्था तक न पहुँचा सकनेवाले आठों लोकीय ध्यान और कठोर कायक्लेश, इन दोनों के स्वानुभूतिजन्य पूर्व प्रयोग इनकी खामियां समझने के लिए आवश्यक थे। इन दोनों के प्रयोगों की असफलता ने ही सही दिशा में चिंतन करने को प्रेरित किया कि अपने चित्त और शरीर पर क्षण-प्रतिक्षण प्रकट होनेवाली सच्चाई का आधार लेकर पहले सांस से काम आरंभ किया जाय। तदनन्तर भीतर की स्वानुभूत नश्वर सच्चाइयों का यथाभूत ज्ञानदर्शन और उनके प्रति विरक्ति उत्पन्न करानेवाली विपश्यना का अभ्यास किया जाय, जिससे कि इंद्रियातीत परमसत्य प्रकट हो जाय।

परन्तु फिर देखा कि इस साधना के लिए शरीर का स्वस्थ सबल होना अनिवार्य है और इसके लिए अतियों का मार्ग त्यागकर उपयुक्त आहार आवश्यक है। अतः दूर फेंके हुए मिट्टी के भिक्षापात्र को उठाया और भिक्षाटन के लिए समीप के सेनानी ग्राम में दुर्बल कदमों से धीरे-धीरे चल पड़ा।

लगभग छह वर्ष पूर्व जब कठोर दुष्कर चर्या आरंभ की थी तभी बोधिसत्व की खोज में निकले हुए राजनगरी कपिलवस्तु के पांच गृहत्यागी ब्राह्मणपुत्र उससे यहीं आ मिले थे और इस तपश्चर्या में उसकी सेवा-सुश्रुषा कर रहे थे। उन्होंने जब देखा कि बोधिसत्व ने देह-दंडन का मार्ग त्याग दिया है और भिक्षा ग्रहण करने चला गया है तो उसके प्रति निराश होकर, उसे छोड़ वाराणसी के समीप ऋषिपत्तन मृगदाय वन की ओर चले गए।

अच्छा ही हुआ। यहां भी धर्मनियामता ने याने धर्म की धर्मता ने बोधिसत्व की मदद की। जिस साधना का अब उसे प्रयोग करना था, उसके लिए एकांत नितांत अनिवार्य था। आनापान और विपश्यना के अन्तर्तप के लिए बोधिसत्व को १५ दिनों की एकांत साधना की आवश्यक सुविधा मिली जो कि बुद्धत्व प्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध हुई।

दो एक दिन शरीर को सबल स्वस्थ बनाने में लगे और फिर इस नए प्रयोग की निरंतरता में जुट गया। वैशाख शुक्ल प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशी तक का यह महत्त्वपूर्ण समय आज पूरा हुआ।

निरंजना नदी के किनारे एक बरगद की छांह में बोधिसत्व ध्यान में लीन था। चौदहवीं का चांद सारी रात अपनी चांदनी की शुभ्र, शुक्ल, शीतल किरणों से आकाश और धरती को अभिसिंचित करता रहा। ध्यान के लिए अत्यंत उपयुक्त वातावरण बना। बरगद के नीचे बैठे हुए बोधिसत्व ने इसका भरपूर प्रयोग किया। आनापान की साधना द्वारा अपनी सम्यक् समाधि पुष्ट की।

रात बीतने का समय समीप आ रहा था। भोर होने में अभी जरा देर थी। सूर्योदय नहीं हुआ था और न ही ऊषा का आगमन। इस शांत नीरव ब्राह्म मुहूर्त में बोधिसत्व ने शरीर को जरा आराम देना चाहा। वह वट वृक्ष के नीचे लेट गया और कुछ ही देर में झपकी लग गयी। निद्रित अवस्था में एक के बाद एक, पांच स्वप्न प्रकट हुए जो कि भविष्य की ओर इंगित करनेवाले पूर्वाभास थे। स्वप्न समाप्त होते ही बोधिसत्व जाग उठा और उनके अर्थों पर विचार करने लगा।

[१] **पहला स्वप्न** : बोधिसत्व ने अपना विशाल विराट रूप देखा। देखा कि वह भारत की सम्पूर्ण पावन धरती पर लेटा हुआ है, जो कि उसके लिए बिछावन बन गयी है। हिमालय का उत्तुंग शिखर उसका तकिया बना हुआ है। उसके पांव दक्षिण भारत [कन्याकुमारी] तक फैल गए हैं और दक्षिणी हिन्द महासागर पर टिके हैं, जो कि उसका पाद-प्रक्षालन कर रहा है। दाहिना हाथ पश्चिमी समुद्र [अरबसागर] पर पड़ा है और बांया पूर्वी समुद्र [बंगाल सागर] पर, जो कि उसकी हथेलियों और अँगुलियों का प्रक्षालन कर रहे हैं। [अखण्ड भारतवर्ष का ऐसा संश्लिष्ट भौगोलिक चित्र इससे पूर्व कहीं देखने में नहीं आया।]

इस स्वप्न से यह बात स्पष्ट हुई कि अनगिनत कल्पों पहले भगवान दीपंकर सम्यक् सम्बुद्ध ने तापस सुमेध के लिए जो आशिर्वादमयी भविष्यवाणी की थी, उसके फलीभूत होने का समय आ गया है। **धुवं बुद्ध भविस्ससि** ।

यह उस भावी बुद्ध का विराट दर्शन था, जो कि साधारण मानवों की तुलना में असाधारणतया महान होगा। उसके महान प्रभावशाली व्यक्तित्व और जन-कल्याणी शिक्षा का प्रभाव सारे भारतवर्ष पर पड़ेगा और फिर दक्षिण, पूर्व और पश्चिमी समुद्रों द्वारा तथा उत्तरी हिमालय के रास्ते सारे विश्व में फैलेगा। [नोट – गंभीर विपश्यी साधक इस बात को खूब समझता है कि शरीर के पांचों अंतिम छोर – दो हाथ, दो पांव और सिर इनमें से प्रतिक्षण अनित्य-बोध की ऊर्जामयी धर्मतरंगें प्रवाहित होती रहती हैं। जो सम्यक् सम्बुद्ध हो जाय उसका तो कहना ही क्या?]

[२] **दूसरा स्वप्न** : बोधिसत्व ने देखा कि उसके लेटे हुए विराट शरीर की नाभि से एक नन्हा सा पौधा उगा है जो कि देखते-देखते शीघ्रगति से बढ़ता हुआ एक बालिश्त से एक हाथ, एक गज, एक बांस, एक योजन होता-होता हजारों योजन ऊंचा उठ गया और अनंत आकाश पर छा गया।

यह स्वप्न इस बात का द्योतक था कि भगवान बुद्ध की शिक्षा केवल धरती के मानवों के लिए ही नहीं होगी, बल्कि वह नभोमंडल के देव-ब्रह्माओं तक भी पहुँचेगी और उनका कल्याण करेगी। बोधिसत्व बुद्ध बनकर **सत्थादेव मनुस्सानं** [देव और मनुष्यों के शास्ता] बनेंगे।

[३] **तीसरा स्वप्न** : बोधिसत्व ने देखा कि चारों ओर से नन्हें-नन्हें अनगिनित जीव उसके चरणों पर आ-आकर गिर रहे हैं। वह सफेद रंग के हैं और काले सिरवाले हैं। बहुत शीघ्र इनकी संख्या इतनी बढ़ी कि ये जीव चरणों से लेकर घुटनों तक छा गए। यह स्वप्न इस बात का पूर्व संकेत था कि काले केशवाले और श्वेत वस्त्रोंवाले अनेक गृहस्थ बुद्ध की चरण-शरण ग्रहण करेंगे और लाभान्वित होंगे। श्वेत वस्त्र और सिर के केश गृहस्थों के प्रतीक हैं। उनके वस्त्र भगवा नहीं, श्वेत है। उनका सिर मुंडित नहीं, केशोंवाला है। याने वे गृहत्यागी नहीं, गृहस्थ हैं। गृहत्यागी भिक्षुओं और भिक्षुणियों के मुकाबले उनकी संख्या कई-कई गुणा अधिक होगी।

[४] **चौथा स्वप्न** : बोधिसत्व ने देखा कि चारों दिशाओं से चार वर्ण के पक्षी उड़ते हुए आए और उसकी गोद में आ गिरे। वे तत्काल अपना वर्ण त्यागकर शुभ्र श्वेत हो गए। इस स्वप्न का तात्पर्य था कि भगवान की सुखद गोद में क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के लोग आयेंगे और भिक्षु जीवन ग्रहण कर परम विशुद्ध हो जायेंगे, अर्हंत अवस्था प्राप्त कर लेंगे। ऐसी अवस्था में वे अपना वर्ण-भेद त्याग देंगें। सभी एक समान हो जायेंगे। जैसे गंगा आदि विभिन्न नदियों के जल समुद्र में समाकर अपनी-अपनी पृथकता गँवा देते हैं, सब एक जैसे समुद्री-जल हो जाते हैं, वैसे ही सभी वर्णों के लोग भिक्षु संघ में सम्मिलित होकर अपने पूर्व काल की पृथकता को खो देंगे। सभी शुद्ध सद्धर्म में समा जायेंगे।

[५] **पांचवा स्वप्न** : बोधिसत्व ने देखा कि गंदगी और मल का एक बड़ा सा टीला है, जिस पर वह चंक्रमण कर रहा है, चहलकदमी कर रहा है। पर उसे जरा सा भी मैल नहीं छू पाता। इस स्वप्न ने इस सच्चाई की ओर संकेत किया कि परम सत्य की खोज के लिए तो बोधिसत्व को निवृत्ति मार्ग अपनाकर मानव समाज से दूर वनप्रदेश में रहना पड़ा, पर सम्बोधि प्राप्त करने के बाद असीम करुणाभरे चित्तसे लोक मंगल के लिए उसी मानव समाज में रहना आवश्यक होगा, जो गंदगी से भरा हुआ है। उसे मुक्ति का मार्ग सिखाना होगा। पूर्व पत्नी, पुत्र, माता, भाई आदि परिवार के अन्य लोग भी आ जुटेंगे। सम्यक् सम्बुद्ध सब पर करुणा बरसायेंगे। उनके लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करेंगे। पर जीवन निरासक्त जीएंगे। ढेर सारे चीवर, दवा, भोजन, आवास, विहार दान में मिलेंगे, पर अपने लिए स्वीकार उतना ही करेंगे, जितना जीवन जीने के लिए आवश्यक होगा। गंदगी में उलझे समाज के बीच रहेंगे, पर सर्वथा निसंग, निस्पृह, निर्लिप्त और निरासक्त।

जिस समय इन स्वप्नों के अर्थों पर चिंतन चल रहा था, उस समय सेनानी ग्रामवाली सुजाता की दासी आयी और उन्हें देख गयी। उन्हें वटदेव समझकर उसने इसकी सूचना अपनी मालकिन को दी। चिंतन समाप्त होते-होते सुजाता खीरभरा पात्र लेकर आयी, जिसके ४९ कौर खाकर बोधिसत्व ध्यान में लग गया।

इस घटना के बाद २४ घंटे बीतते-बीतते, याने अगली रात की पूर्णिमा का चांद पश्चिम में ढलते-ढलते बोधिसत्व ने बोधिवृक्ष के तले सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की। वे अनुत्तर सम्यक् सम्बुद्ध हुए और बोधिसत्व की अवस्था में देखे गए स्वप्न एक-एक करके सभी सत्य साबित हुए। बड़ा लोक मंगल हुआ। सचमुच बड़ा ही लोक मंगल हुआ। बड़ा लोक कल्याण हुआ, सचमुच बड़ा ही लोक कल्याण हुआ!

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.